बाबा दीप सिंह जी

बाबा दीप सिंह जी का जन्म 27 जनवरी, 1682 ईस्वी को माता जीऊणी की कोख से पिता भक्तू जी के गृह में गाँव पहूविंड जिला अमृतसर में हुआ । उन दिनों माता पिता ने आप का नाम दीपा रखा । जब आप किशोर अवस्था में पहुँचे तो आपके माता पिता ने 1699 ईस्वी की वैशाखी के शुभ अवसर पर आप को श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के दर्शन हेतु आनन्दपुर साहब ले आये। आपने उन्हीं दिनों अमृत धारण किया और उस नये वातावरण में आनन्दित होने लगे । आप जी ने अपने माता-पिता जी से आज्ञा लेकर वहीं गुरू चरणों में रहने का मन बना लिया । यहीं आपने विद्या प्राप्त की और यहीं आपने अपनी रूचि अनुसार शस्त्र विद्या सीखी । आप बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे, इसलिए आपने कई प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुणता प्राप्त हो गई ।

सन् 1704 के प्रारम्भ में आपके माता पिता आपसे मिलने आये और गुरू जी से अनुरोध किया कि दीप सिंह को आज्ञा प्रदान की जाए कि वह अपने विवाह के लिए घर अमृतसर वापिस उनके साथ चले । परन्तु आपका मन गुरू चरणों में रम गया था क्योंकि स्थानीय मर्यादा, कीर्तन, कथा, लंग, सिंहों की वीरता के कर्त्तव्य और उनकी वेशभूषा ने आपका मन मोह लिया था, अतः आपके लिए इस वातावरण को त्याग कर घर जाना असहनीय पीड़ा अनुभव हो रही थी । गुरू आज्ञा मिलने पर आप अपने माता पिता के साथ गृहस्थ आश्रम को अपनाने घर पहुँच गये ।

कुछ दिनों पश्चात् जब आपका 'आनंद कार्ज' (विवाह) हुआ तो आपको समाचार मिला कि गुरूदेव ने मुगलों से भयंकर युद्ध करते हुए आनन्दपुर त्याग दिया है । जब आपको गुरूदेव के विषय में पूर्ण रूप से ठीक जानकारी मिली तो आप अपने सहयोगियों सहित गुरूदेव जी के दर्शनों को साबों की तलवंडी पहुँचे और श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के चरणों में शीश रखकर युद्ध के समय में अनुपस्थित रहने की क्षमा याचना की । इस पर गुरूदेव ने दीप सिंह जी को अपने सीने से लगाकर कहा कि कोई बात नहीं, अब तुम्हारे जिम्मे और बहुत से कार्य हैं जो कि तुमने भविष्य में सम्पूर्ण करने हैं ।

उन दिनों श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी के भाई मनी सिंह जी से श्री (गुरू) ग्रन्थ साहब की पुनः रचना करवा रहे थे, जिसमें उन्होंने श्री गुरू तेग बहादुर साहब की रचनाएं भी लिखवा कर सम्पूर्ण कर दिया । संगतों के अनुरोध पर आप जी ने वहाँ उपस्थित समस्त शिष्यों (सिक्खों) को समस्त वाणी के अर्थबोध करवाएं । इन विद्यार्थियों की संख्या 48 बताई जाती है, जिसमें भाई दीप सिंह जी भी थे । गुरूदेव जी ने साबो की तलवंडी से प्रस्थान करते समय युवक भाई दीप सिंह जी को योग्य जानकर वहाँ पर उसी प्रकार गुरूमति विद्यालय को सदैव चलाने का आदेश दिया और कहा कि यह स्थान गुरू की कांशी कहलाएगा । भाई दीप सिंह जी ने गुरू आज्ञा अनुसार श्री गुरू ग्रंथ साहब की चार प्रतियां तैयार की जिन्हें अलग अलग तख्तों पर स्थापित किया गया । आप जी ने इस विद्यालय (सँस्था) का नाम गुरू आशा अनुसार दमदमी टकसाल रखा ।

सन् 1709 ईस्वी में भाई दीप सिंह गुरू आदेश के अनुसार बंदा सिंह बहादुर की सेना में कार्यरत हो गये । सरहिन्द फतेह के समय आपने बढ़चढ़ के आगामी पंक्तियों में होकर युद्ध में भाग लिया ।

सन् 1746 ईस्वी में आप पँजाब के राज्यपाल यहिया खान ने दीवान लखपत राय के नेतृत्त्व में सिक्खों का सर्वनाश करने का अभियान चलाया तो उस संकट के समय आप अपनी सैनिक टुकड़ी लेकर अपने भाइयों की सुरक्षा हेतु साबों की तलवंडी से कान्हूवाल के जँगलों में सहायता के लिए पहुँचे । इस युद्ध को छोटा घल्लूघारा कहा जाता है ।

सन् 1748 में जब 'दल खालसा' का पुनर्गठन हुआ तो (बाबा) दीप सिंह जी को सरबत खालसा ने 'मिसल शहीदां दी' का नेतृत्त्व सौंपा । सन् 1756 ईस्वी में जब अहमदशाह अब्दाली ने जब भारत पर चौथा आक्रमण किया तो उसने बहुत से भारतीय नगरों को लूटा तथा बहुत सी भारतीय सुन्दर अबला नारियों को दासी बनाकर काबुल लौट रहा था, तभी बाता दीप सिंह जी की 'शहीद मिसल' की सैनिक टुकड़ी ने कुरूक्षेत्र के पास पिपली तथा मारकंडे के दरिया में छापे मारकर गोरिल्ला युद्ध के सहारे लगभग तीन सौ महिलाओं को स्वतन्त्र करवा लिया और इसके साथ ही कई मूल्यवान वस्तुओं से लदे पशुओं को भी घेरकर वहाँ से हांक कर अपने क्षेत्र में ले जाने में सफल हो गये । इस प्रकार बाबा दीप सिंह जी ने लुटेरे अब्दाली का भार हल्का कर दिया । जिन अबलाओं को आतंकवादियों से छुड़वाया, चाहे वे हिन्दू परिवारों की थी अथवा मुस्लिम परिवारों

की, उनकी रक्षा में कोई भेदभाव नहीं किया गया । सिक्खों के ऊँचे आचरण के कारण ही तो ये मुगल बालाएं पुकारा करती थीं -

'मोड़ी बाबा कच्छ वालिया, नहीं ता गई रन वसरे नूं गई'

(हे कंदहिरे वाले बाबा, आगे जाकर शत्रुओं को जरा रोकना नहीं तो अबलाओं को वे बसरे नगर की ओर भगाकर ले जा रहे हैं)

दूसरे सिंह सरदारों ने भी बाबा जी का अनुसरण किया, उन्होंने भी विभिन्न क्षेत्रों में जहाँ उनको सुविधा थी, अब्दाली के लूटे हुए माल तथा अबला नारियों को मुक्त करवाने के लिए गोरिल्ला युद्ध अभियान चलाते रहे । इस प्रकार सिंह नदी तक सिक्खों ने अब्दाली से लूट कामाल वापिस छीन लिया ।

वापिस जाते समय अब्दाली ने अपने पुत्र तैमूर शाह को पँजाब का राज्यपाल नियुक्त करके जहान खान को उसका सेनापति बनाया तथा आदेश दिया कि तुम्हारा मूल लक्ष्य सिक्खों का सर्वनाश करना है ।

जब जहान खान श्री दरबार साहब की ओर आक्रमण करने की तैयारियों में व्यस्त था तभी वैशाखी पर्व आ गया, 13 अप्रैल सन् 1757 ईस्वी को जब खालसा अपना जन्मदिन उत्सव मनाने श्री दरबार साहब एकत्रित होने लगे, तभी जहान खान ने विशाल सेना के साथ लाहौर से अमृतसर पर आक्रमण कर दिया । इस समय अधिकांश सिक्खों के जत्थे अलग अलग मुहिमों में दूरदराज क्षेत्रों में गये हुए थे, इसलिए जनसाधारण इस आक्रमण का मुकाबला न कर सके और बहुत से सिक्ख योद्धा मारे गये तथा कुछ समय उपयुक्त न देखकर बिखर गये ।इस प्रकार श्री दरबार साहब शत्रु के कब्जे में चला गया । जहान खान ने पवित्र सरोवर में कूड़ा फैंकवा दिया और गायों का वध करके श्री दरबार साहब में रख दिया गया । जिससे कुछ दिनों में पूरे वातावरण में दुर्गन्ध फैल गई । उसने कई भवनों को भी ध्वस्त कर दिया और चारों तरफ पहरे बैठा दिये ।

जब इस अपमान की सूचना बाबा दीप सिंह जी को मिली तो वह इस कुकृत्य कांड को सुनकर आक्रोश में आ गये । भावुकता में उन्होंने नगाड़े पर चोट लगाकर युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश दे दिया तुरन्त समस्त 'साबों की तलवंडी' नगर के श्रद्धालु नागरिक इक्ट्ठे हो गये । सभी सिंहों को सम्बोधित होते हुए बाबा दीप सिंह जी ने धर्म युद्ध का आह्वान करते हुए कहा

– सिंहों, हमने आतायी से पवित्र हरि मन्दिर साहब (दरबार साहब) के अपमान का बदला अवश्य ही लेना है । मौत को चाहने के लिए शहीदों की बरात चढ़नी है । जिन्होंने गुरू की खुशियां प्राप्त करनी हैं तो केसरी बाणा (वस्त्र) पहन कर शहीदा जाम पीने के लिए तैयार हो जाये । बस फिर क्या था, सिंहों ने शमां पर मर मिटने वाले परवानों की तरह ऊँचे स्वर में जैकारे लगाकर परवानगी दे दी । बाबा जी का आदेश गाँव गाँव पहुँचाया गया । जिससे चारों दिशाओं से सिंह अस्त्र–शस्त्र लेकर एकत्रित हो गये ।

चलने से पहले बाबा दीप सिंह जी ने समस्त मरजीवड़ों (आत्म बलिदानी) के समक्ष अपने खण्डे (दुधारी तलवार) से एक भूमि पर रेखा खींची और ललकार कर कहने लगे – हमारे साथ केवल वही चलें जो मृत्यु अथवा विजय में से किसी एक की कामना करते हैं, यदि हम अपने गुरूध ाम को आजाद न करवा पायें तो वही रणक्षेत्र में काम आयेंगे और गुरू चरणों में न्यौछावर हो जायेंगे । उन्होंने कहा – मैं शपथ लेता हूँ कि मैं अपना सिर श्री दरबार साहब में गुरू चरणों में भेंट करूँगा ।

उन्होंने आगे कहा – इसके विपरीत जो व्यक्ति अपनी घर–गृहस्थी के सुख आराम भोगना चाहता था, वह अभी वापिस लौट जाये और जो मृत्यु दुल्हन को ब्याहना चाहते हैं तो वह खण्डे द्वारा खींची रेखा को पाकर करे हमारे साथ चलें ।

इधर या उधर की ललकार सुनकर लगभग 500 सिंह खण्डे द्वारा खींची रेखा पार करके बाबा जी के नेतृत्त्व में अमृतसर की ओर चल पड़े । रास्ते में विभिन्न गाँवों के नौजवान भी इन शहीदों की बारात में शामिल होते गये । तरनतारन पहुँचने तक सिंहों की संख्या 5,000 तक पहुँच गई । लाहौर दरबार में सिक्खों की इन तैयारियों की सूचना जैसे ही पहुँची, जहान खान ने घबराकर इस युद्ध को इस्लाम खतरे में है, का नाम लेकर जहादिया को आमन्त्रित कर लिया । हैदरी झंडा लेकर गाज़ी बनकर अमृतसर की ओर चल पड़े । इस प्रकार उनकी सँख्या सरकारी सैनिकों को मिलाकर बीस हजार हो गई ।

अफगान सेनापति जहानखान अपनी सेना लेकर अमृतसर नगर के बाहर गरोवाल नामक स्थान पर सिक्खों से टकराया, सिंह इस समय श्री दरबार साहब के अपमान का बदला लेने के लिए मरने-मारने पर तुले हुए थे । ऐसे में उनके सामने केवल लूटमार के माल का आश्वासन लेकर लड़ने वाले जहादी कहाँ टिक पाते । वे तो केवल बचाव की लड़ाई लड़कर कुछप्राप्त करना चाहते थे किन्तु यहाँ तो केवल सामने मृत्यु ही मंडराती दिखाई देती थी । अतः वे धीरे धीरे भागने में ही अपना भला देखने लगे ।

सिक्खों ने ऐसी वीरता से तलवार चलाई कि जहान खान की सेना में भगदड़ मच गई । जगह जगह शवों के ढेर लग गये । जहान खान को सबक सिखाने के लिए बाबा जी का एक निकटवर्ती सिक्ख सरदार दयाल सिंह 500 सिंहों के एक विशेष दल को लेकर शत्रु दल को चीरता हुआ जहान खान की ओर लपका परन्तु जहान खान वहाँ से पीछे हट गया, तभी उनका सामना यकूब खान से हो गया, उन्होंने उसके सिर पर गुरज (गदा) दे मारा, जिसके आघात से वह वहीं ढेर हो गया । दूसरी तरफ जहान खान का नायब सेना पति जमल शाह आगे बढ़ा और बाबा जी को ललकारने लगा । इस पर दोनों में घमासान युद्ध हुआ, उस समय बाबा दीप सिंह जी की आयु 75 वर्ष की थी, जबकि जमाल शाह की आयु लगभग 40 वर्ष की रही होगी । उस युवा सेनानायक से दो दो हाथ जब बाबा जी ने किये तो उनका घोड़ा बुरी तरह से घायल हो गया । इस पर उन्होंने घोड़ा त्याग दिया और पैदल ही युद्ध करने लगे । बाबा जी ने पैंतरा बदल कर एक खण्डे का वार जमाल शाह की गर्दन पर किया, जो अचूक रहा परन्तु इस बीच जमालशाह ने बाबा जी पर भी पूरे जोश के साथ तलवार का वार कर दिया था, जिससे दोनों पक्षों के सरदारों की गर्दनें एक ही समय कट कर भूमि पर गिर पड़ी । दोनों पक्षों की सेनाएं यह अद्भुत करिश्मा देखकर आश्चर्य में पड़ गई कि तभी निकट खड़े सरदार दयाल सिंह जी ने बाबा जी को ऊँचे स्वर में चिल्ला कर कहा - बाबा जी, बाबा जी, आपने तो रणभूमि में चलते समय प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपना शिश श्री दरबार साहब में गुरू चरणों में भेंट करूँगा । आप तो यहीं रास्ते में शरीर त्याग रहे हैं ? जैसे ही यह शब्द मृत बाबा दीप सिंह जी के कानों में गूंजे, वह उसी क्षण उठ खड़े हुए और उन्होंने कहा - सिक्ख के द्वारा पवित्र हृदय से की गई अरदास व्यर्थ नहीं जा सकती और उन्होंने आत्मबल से पुनः अपना खण्डा और कटा हुआ

सिर उठा लिया । उन्होंने एक हथेली पर अपना सिर धर लिया और दूसरे हाथ में खण्डा लेकर फिर से रणक्षेत्र में जूझने लगे ।

जब शत्रु पक्ष के सिपाहियों ने मृत बाबा जी को शीश हथेली पर लेकर रणभूमि में जूझते हुए देखातो वे भयभीत होकर - अली अली, तोबा तोबा, कहते हुए रणक्षेत्र से भागने लगे और कहने लगे कि हमने जीवित लोगों को तो लड़ते हुए देखा है परन्तु सिक्ख तो मर कर भी लड़ते हैं । हम जीवित तो लड़ सकते हैं, मृत से कैसे लड़ेंगे ? यह अद्‌भुत आत्मबल का कौतुक देखकर सिक्खों का मनोबल बढ़ता ही गया, वे शत्रु सेना पर दृढ़ निश्चय को लेकर टूट पड़े । बस फिर क्या था, शत्रु सेना भय के मारे भागने में ही अपनी भलाई समझने लगी । इस प्रकार युद्ध लड़ते हुए बाबा दीप सिंह जी श्री दरबार साहब की ओर आगे बढ़ने लगे । परन्तु जब वह अभी एक मील की दूरी पर ही थे तो उन्होंने अपना शीश पूरे आत्मबल के वेग से श्री दरबार साहब की ओर फैंका जो कि परिक्रमा में आ गिरा । इस प्रकार बाबा जी अपनी शपथ निभाते हुए गुरू चरणों में जा विराजे और शहीदों की सूची में सम्मिलित हो गये । इनके तीन शहीदी स्मारक हैं, प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती । यह सँसार विदित है कि बाबा जी ने शहीद होने के पश्चात् केवल अपनी शपथ की लज्जा हेतु आत्मबल का प्रयोग किया और सँसार को बताया कि सिक्ख आत्मबल रहते भी सीमाओं में रहता है परन्तु कभी इसकी आवश्यकता पड़ ही जाए तो इसका सदुपयोग किया जा सकता है ।

जैसे ही सिक्खों ने विजय के डंके बजाते हुए श्री हरि मन्दिर पर पुन: काबिज होने का प्रयास किया किन्तु तभी ताजा दम फौजी कुमक लेकर हाज़ी अत्ताई खान अमृतसर पहुँच गया । उस समय तक अधिकांश सिंह योद्धा शहीदी पा चुके थे । फिर से भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया परन्तु इस बार शत्रु पक्ष का हाथ ऊपर हो गया । अत: सिंह विजय किया हुआ श्री दरबार साहब छोड़कर अगली तैयारी के लिए वापिस लौट पड़े ।